f'k{kd f'k{kk e thou dk'ky vH;kl

[1]çk0 Ckh0 lh0 nc] [2]Mk0 jkgy fljkgh
[1]आचार्य एवं संकायाध्यक्ष, शिक्षा संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ, उ0प्र0, भारत
[2]सह आचार्य, शिक्षा संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ, उ0प्र0, भारत

प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति एवं विकास उसकी शिक्षा व्यवस्था में निर्धारित है। शिक्षा वह संतति है जिसे प्रत्येक पीढ़ी के लोग अपनी भावी संतानों को इस उद्देश्य से प्रदान करते हैं कि वह सन्तानें कम से कम इस संतति की रक्षा करने की योग्यता प्राप्त करें और यदि संभव हो तो अब तक के रक्षित विकास के स्तर की वृद्धि करें। भारत में शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार संचालित की गई थी जहाँ शिक्षा को ज्ञान के माध्यम से एवं ज्ञान को प्रेम के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया जाता रहा है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य पावनता तथा पवित्रता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक भावना, सामाजिक भावना एवं सामाजिक कुशलता में वृद्धि और राष्ट्रीय सांस्कृतिक संरक्षण व प्रसार चित्त प्रवृत्तियों का विरोध तथा ईश्वर भक्ति एवं उपासना पर बल प्राचीन कालों में निर्धारित किया गया था। समय के साथ–साथ देश की प्रशासनिक व्यवस्था में हो रहे बदलाव तथा भारत पर मुगलों एवं अंग्रेजी शासन के प्रभाव के कारण शिक्षा व्यवस्था एवं उद्देश्यों में बदलाव आता चला गया जिस शिक्षा को ज्ञान एवं प्रेम से जोड़ा गया था वह साक्षरता के साथ सीमित होकर रह गयी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अगर शिक्षा की व्यवस्था पर नजर दौड़ायी जाये तो व्यवहार के तीनों पक्षों ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक में से केवल ज्ञानात्मक पक्ष तक ही शिक्षा का मापन किये जाने की परम्परा विकसित हो गयी है। छात्रों द्वारा शिक्षा के रूप में प्राप्त प्रमाण पत्रों का मापदण्ड परीक्षा में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर तक सीमित हो गया है। व्यवहार के भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों का मूल्यांकन करने की कोई भी विधि विकसित नहीं की गई है, और न ही इसका कोई चलन है। इसी परिप्रेक्ष्य में अगर वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था का विश्लेषण किया जाये तो व्यवहार के पक्षों में से क्रियात्मक पक्ष पर विशेष जोर दिये जाने की परम्परा रही थी। क्रियात्मक पक्ष में विकसित हो जाने की स्थिति में भावात्मक एवं ज्ञानात्मक पक्ष स्वयं ही विकसित हो जाता है। ऐसा वैदिक काल के शास्त्रों का मानना था। इसलिए उस समय की शिक्षा व्यवस्था में क्रियात्मक पक्ष का अभ्यास कराया जाता था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी वही होता था जिसकी क्रियात्मक पक्ष की स्थिति उच्च शिक्षा प्राप्त करने योग्य मानी जाती थी। लेकिन वर्तमान समय में इसके विपरीत ज्ञान के पक्ष पर विशेष जोर है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए केवल उसमें प्रवेश की योग्यता के रूपों में प्रमाण–पत्र को प्रस्तुत करना होता है यदि इसे उच्च स्तरीय बनाने का भी प्रयास किया जाता है तो परीक्षा के रूप में ज्ञानात्मक पक्ष का ही मापन एवं मूल्यांकन किया जाता है। भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष की कोई भी भूमिका स्वीकार नहीं है। इस तरह से देश का विकास एवं सार्थक परिवर्तन हो जायेगा। यह इस प्रश्न का विषय है तथा देश के सभी जागरूक एवं विद्वानों को इस तथ्य पर गहन चिंतन एवं विचार विमर्श करने की आवश्यकता है। शास्त्र गवाह है कि भारत में जो ज्ञान की स्थिति रही है वो वर्तमान समय में प्रमाणिकता के रूप में सामने आती जा रही है। वेद एवं पुराणों में यह तथ्य स्पष्ट है कि विज्ञान आज जिन चीजों का आविष्कार कर रहा है वह वेदों में पहले से ही विद्यमान हैं तथा गणनात्मक स्थिति भी लगभग एक समान है। अतः इन तथ्यों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में परिवर्तन यदि उच्च शिक्षा से प्राप्त करनी है तो उच्च शिक्षा व्यवस्था की परम्परा को बदलना होगा। उच्च शिक्षा में कोई विषय या क्षेत्र हो उसमें प्रवेश की स्थिति एवं शिक्षा प्रक्रिया दोनो में बदलाव करना होगा। प्रवेश का माध्यम प्रमाण–पत्र या परीक्षा न होकर व्यवहार के क्रियात्मक पक्ष के आधार पर उच्च कक्षाओं में प्रवेश निर्धारित करना होगा। शिक्षा प्रक्रिया ज्ञानात्मक पक्ष से शुरू न करके क्रियात्मक पक्ष से करने की प्रक्रिया शुरू करनी होगी। चूंकि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी कौन है? इसे निर्धारित करना होगा। उच्च शिक्षा में उसे ही प्रवेश दिया जाये जिसमें क्रियात्मक पक्ष की स्थिति उच्च शिक्षा प्राप्त करने योग्य हो एवं भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था को संचालित करने का प्रयास करना होगा। भारत में आधुनिक उच्च शिक्षा का श्रीगणेश यूरोपीय ईसाई मिशनरियों द्वारा हुआ इस देश में सर्वप्रथम पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों का प्रवेश हुआ उन्होंने यहाँ प्राथमिक शिक्षा के साथ–साथ गोवा, कोच्चीन, चाल और बान्द्रा में कुछ उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थापना भी की। जिसमें लेटिन, पुर्तगाली, व्याकरण, संगीत एवं तर्कशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी, परन्तु इनका स्वरूप आधुनिक उच्च शिक्षा से काफी भिन्न था। सही अर्थों में भारत में आधुनिक उच्च शिक्षा का श्रीगणेश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने किया। इसने सर्वप्रथम 1781 ई0 में कलकत्ता में कलकत्ता मदरसा की स्थापना, 1971 ई0 में बनारस संस्कृति कॉलेज जिसमें हिन्दू उच्च शिक्षा और इंग्लैण्ड की उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम एक साथ चलाये गये। 18 हजार में से कलकत्ता में केवल इंग्लैण्ड की उच्च शिक्षा प्रणाली पर आधारित फोर्ट विलियम कॉलेज का निर्माण किया गया। जिसमें अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य एवं यूरोपीय ज्ञान–विज्ञान के साथ–साथ भारतीय भाषाओं, भारतीय इतिहास एवं हिन्दू मुस्लिम कानून की शिक्षा दी गई। 1971 में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने विश्वविद्यालयों में कृषि कानून, आर्युविज्ञान, इंजीनियरिंग और शिक्षक शिक्षा की व्यवस्था करने का सुझाव दिया। जिससे शिक्षा व्यवस्था में भारी परिवर्तन हुआ। 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने 10.2.3 की व्यवस्था लागू करते हुए 2 के बाद उच्च स्नातक शिक्षा शुरू कर दी। जिसको कला, वाणिज्य, विज्ञान विधि, कृषि, इंजीनियरिंग और प्रबन्धन में परास्नातक शिक्षा और शोध कार्य की व्यवस्था की गई। सबसे अहम प्रश्न यह है कि उपरोक्त ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का अवलोकन किया जाये तो यह अपूर्ण रूप से स्पष्ट है कि आज के उच्च शिक्षा व्यवस्था में भारतीय वैदिक शिक्षा व्यवस्था का कोई भी अंश न तो सम्मिलित है और न ही किसी भी व्यवस्था से संबंधित है। अतः भारत के परिवर्तन में उच्च शिक्षा व्यवस्था का लाभ प्राप्त करना है तो उसके लिए अपने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन लाना होगा। इससे यह प्रश्न उठता है कि परिवर्तन क्या किया जाये? इस सम्बन्ध में यह तथ्य स्पष्ट करना है कि वैदिक शिक्षा प्रणाली के माध्यम से ही उच्च शिक्षा की भूमिका में बदलाव लाया जा सकता है। जिसके लिए ज्ञानात्मक पक्ष से शिक्षा शुरू न करके क्रियात्मक पक्ष से शिक्षा शुरू करनी होगी। अगर गुरूकुल व्यवस्था लागू नहीं कर सकते हैं तो भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के प्रमाण पत्र के साथ–साथ व्यवहार–गत स्थिति एवं विद्यार्थी का बीता हुआ कल में किये गये आचरण क्षेत्र भी प्रवेश का माध्यम बनाना होगा एवं बालक की मूल–प्रवृत्तियों में छिपे हुए कौशल की पहचान करने की व्यवस्था के साथ–साथ उसी क्षेत्र में उसे आगे का ज्ञान प्राप्त करने की आधिकारिक सुविधा उपलब्ध करानी होगी, तभी उच्च शिक्षा के माध्यम से भारत में सार्थक परिवर्तन लाया जा सकता है।

उपरोक्त तथ्यों की स्पष्टता एवं विश्लेषण के उपरांत अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु प्रत्येक शिक्षक–शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम निर्माण करते समय जीवन कौशल के पहलुओं को समाहित किया जाना नितांत आवश्यक है क्योंकि शिक्षा का प्रमुख कार्य मनुष्य में जीवन कौशल का विकास करना है। ताकि मनुष्य अपने जीवन को परिस्थिति एवं आवश्यकता के आगे परिवर्तित एवं संगठित कर सके और यह तभी संभव है कि देश के शिक्षकों को शिक्षा प्रदान करते समय जीवन में विभिन्न कौशलों का अध्ययन कराया जाये। अब प्रश्न यह है कि क्या ऐसा हो रहा है? क्यों ऐसा होता था, या क्या ऐसा होगा? अगर इन प्रश्नों पर विचार किया जाये तो धर्मग्रन्थों किवदंतियों एवं नीतिशास्त्र के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन कालीन शिक्षक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक की उपाधि उसी को प्रदान की जाती थी जो जीवन के सभी कौशलों का पूर्ण रूप से प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता था। समय और परिस्थितियों के मद्देनजर भारतीय संस्कृति अपनी मौलिकता खोती गई। मुगलों, अंग्रेजों की दास्तां ने भारतीय परंपराओं शिक्षक–शिक्षा व्यवस्था में इस प्रकार परिवर्तन किया कि भारतीयता को मूल संस्कृति एवं संस्कार दूर होते चले गये। अंग्रेजी शासन काल ये पास्चात्य संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ एवं पास्चात्य परंपराओं एवं संस्कारों के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था की गई जो ज्ञान व्यवहारिक रूप से प्रदान किया जा रहा था। उसे सैद्धांतिक रूप से प्रदान किया जाने लगा और इस आधार से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष में विश्वास करने वाले परंपरा ने अर्थ को प्रधान बना लिया। जिसे भौतिकता युग कहा जाये तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा एवं जीवन कौशल के मध्य कोई संबंध नहीं है। शिक्षक शिक्षा से तात्पर्य केवल प्रमाण पत्र प्राप्त करने से है। अब प्रश्न यह है कि उनका यही व्यवस्था कायम रही तो आगे क्या होगा? जैसा परिस्थितियों को देखते हुए विदित होता है कि शिक्षक का प्रमाण पत्र तो लोगो का पास उपलब्ध है।

लेकिन शिक्षण का कौशल एवं ज्ञान नाममात्र का है। जैसे एक खाली घड़ा दूसरे खाली घड़े को नहीं भर सकता है, उसी तरह एक कौशल विहीन शिक्षक छात्रों में जीवन कौशल का विकास नही कर सकता है। अब प्रश्न यह है कि क्या इस व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता, तो इसका जवाब यही होगा कि सभी लोगों को एक साथ जुड़ कर प्रतिबद्ध होकर राष्ट्रीय चेतना के साथ कार्य करना होगा। शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम एवं व्यवस्था में बदलाव करना होगा सैद्धांतिक पहलुओं पर ध्यान न देकर व्यवहारिक पहलुओं की तरफ अग्रसर होना होगा। क्रियात्मक पक्ष से शुरू होकर ज्ञानात्मक पक्ष तक पहुंचना होगा। अर्थात वैदिक परंपरा शिक्षक शिक्षा कार्य शैली को अपनाना होगा। जीवन के साथ शिक्षक–शिक्षा व्यवस्था को जोड़ना

होगा एवं नीचे वर्णित सुझावों की तरफ सभी शिक्षाविदों, शिक्षकों एवं शिक्षक निर्माण कर्ताओं को ध्यान देना होगा।

1 छात्र के अन्दर असीम शक्ति है, शिक्षक को उसके निकालने के लिए क्रियाविधि का ज्ञान आवश्यक है।
2 प्रत्येक जीव में विशिष्ट क्षमताओं के साथ एक गुण ऐसा निहित है जो किसी अन्य व्यक्ति में नहीं है। उसे बढ़ावा देना होगा।
3 छात्र अनुकरण के द्वारा प्रारंभिक अवस्था में सीखता है। इसलिए विद्यालय के वातावरण एवं शिक्षक के व्यवहार को सुसंस्कृति बनाना होगा।
4 शिक्षक का चयन किसी प्रवेश परीक्षा आधारित न होकर व्यवहार कौशल आधारित करना होगा।
5 शिक्षक को प्रशिक्षण हेतु चुने जाने से पहले उसकी आत्मचेतना, दृढ़संकल्पना एवं सांसारिक ज्ञान को परीक्षा की जानी होगी।
6 जीवन कौशल के पहलुओं को स्पष्ट एवं अंतिम लक्ष्य की संकल्पना को स्पष्ट करना होगा।
7 उपरोक्त पहलुओं का ध्यान में रखते हुए शिक्षक शिक्षा में अगर जीवन कौशल का अभ्यास कराया जाये, तो यह संभव है कि आने वाले भविष्य में इस देश की दिशा एवं दशा परिवर्तित हो जाये तथा सभी व्यक्ति अपनी भूमिका के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सके।